निर्वाणशताब्दी-संस्करण

# आर्याभिविनयः

पृष्ठ : ५६१ से ६२४

* ओ३म् *

# अथार्य्याभिविनयोपक्रमणिकाविचारः ।

सर्वात्मा सच्चिदानन्दोऽनन्तो यो न्यायकृच्छुचिः ।
भूयात्तमां सहायो नो दयालुः सर्वशक्तिमान् ॥१॥
चक्षूरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे चैत्रे मासि सिते दले ।
दशम्यां गुरुवारेऽयं ग्रन्थारम्भः कृतो मया ॥२॥
बहुभिः प्रार्थितः सम्यग्ग्रन्थारम्भः कृतोऽधुना ।
हिताय सर्वलोकानां ज्ञानाय परमात्मनः ॥३॥
वेदस्य मूलमन्त्राणां व्याख्यानं लोकभाषया ।
क्रियते सुखबोधाय ब्रह्मज्ञानाय सम्प्रति ॥४॥
स्तुत्युपासनयोः सम्यक् प्रार्थनायाश्च वर्णितः ।
विषयो वेदमन्त्रैश्च सर्वेषां सुखवर्द्धनः ॥५॥
बिमलं सुखदं सततं सुहितं जगति प्रततं तदु वेदगतम् ।
मनसि प्रकटं यदि यस्य सुखी स नरोस्ति सदेश्वरभागधिकः ॥६॥
बिशेषभागीह वृणोति यो हितं, नरः परात्मानमतीवमानतः ।
अशेषदुःखात्तु विमुच्य विद्यया, स मोक्षमाप्नोति न कामकामुकः ॥७॥

व्याख्यान—जो परमात्मा, सबका आत्मा, सत् चित् आनन्दस्वरूप, अनन्त, अज, न्यायकारी, निर्मल, सदा पवित्र, दयालु, सब सामर्थ्यवाला हमारा इष्टदेव है वह हम को सहाय नित्य देवे, जिससे महाकठिन काम भी हम लोग सहज से करने को समर्थ हों । हे कृपानिधे ! यह काम हमारा आप ही सिद्ध करनेवाले हो, हम आशा करते हैं कि आप अवश्य हमारी कामना सिद्ध करेंगे ॥ १ ॥

संवत् १९३२ मिती चैत्र सुदी १० गुरुवार के दिन इस ग्रन्थ का आरम्भ किया है ॥ २ ॥ बहुत सज्जन लोग, सबके हितकारक धर्मात्मा विद्वान् विचारशील जनों ने मुझसे प्रीति से कहा तब सब लोगों के हित और यथार्थ परमेश्वर का ज्ञान तथा प्रेम भक्ति यथावत् हो इसलिये इस ग्रन्थ का आरम्भ किया है ॥ ३ ॥ इस ग्रन्थ में केवल दो वेदों के मूल मन्त्रों का प्राकृतभाषा में व्याख्यान किया है जिससे सब लोगों को सुखपूर्वक बोध हो और ब्रह्मज्ञान यथार्थ हो ॥ ४ ॥ इस ग्रन्थ में वेदमन्त्रों से सब सुखों की बढ़ानेवाली परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना व उपासना तथा धर्मादि विषय का वर्णन किया है ॥ ५ ॥ जो ब्रह्म विमल, सुखकारक, पूर्णकाम, तृप्त, जगत् में व्याप्त, वही सब वेदों से प्राप्य है, जिस

बृहस्पते, परमात्मन् ! हम लोगों को (बृहत्) सबसे बड़े सुख को देनेवाले आप ही हो, हे सर्वव्यापक, अनन्त पराक्रमेश्वर विष्णो ! आप हमको अनन्त सुख देओ, जो कुछ मांगेंगे सो आपसे ही हम लोग मांगेंगे, सब सुखों का देनेवाला आप के विना कोई नहीं है, सर्वथा हम लोगों को आपका ही आश्रय है। अन्य किसी का नहीं क्योंकि सर्वशक्तिमान् न्यायकारी दयामय सबसे बड़े पिता को छोड़ के नीच का आश्रय हम लोग कभी न करेंगे, आपका तो स्वभाव ही है कि अङ्गीकृत को कभी नहीं छोड़ते, सो आप सदैव हमको सुख देंगे यह हमको दृढ़ निश्चय है ॥१॥

---

## मूलमन्त्र स्तुति विषय

अ॒ग्निमी॑ळे पु॒रोहि॑तं य॒ज्ञस्य॑ दे॒वमृ॒त्विज॑म् ।
होता॑रं रत्न॒धात॑मम् ॥ २ ॥ ऋ० १।१।१।१॥

व्याख्यान—हे वन्द्येश्वराग्ने ! आप ज्ञानस्वरूप हो, आप की मैं स्तुति करता हूं, सब मनुष्यों के प्रति परमात्मा का यह उपदेश है—हे मनुष्यो ! तुम लोग इस प्रकार से मेरी स्तुति, प्रार्थना और उपासनादि करो जैसे पिता वा गुरु अपने पुत्र वा शिष्य को शिक्षा करता है कि तुम पिता वा गुरु के विषय में इस प्रकार से स्तुति आदि का वर्त्तमान करना, वैसे सबके पिता और परम गुरु ईश्वर ने हमको कृपा से सब व्यवहार और विद्यादि पदार्थों का उपदेश किया है जिससे हमको व्यवहार ज्ञान और परमार्थ ज्ञान होने से अत्यन्त सुख हो। जैसे सबका आदिकारण ईश्वर है, वैसे परम विद्या वेद का भी आदिकारण ईश्वर है। हे सर्व हितोपकारक ! आप "पुरोहितम्" सब जगत् के हितसाधक हो, हे यज्ञदेव ! सब मनुष्यों के पूज्यतम और ज्ञान-यज्ञादि के लिये कमनीयतम हो, "ऋत्विजम्" सब ऋतु वसन्त आदि के रचक, अर्थात् जिस समय जैसा सुख चाहिये उस सुख के सम्पादक आप ही हो, "होतारम्" सब जगत् को समस्त योग और क्षेम के देनेवाले हो और प्रलय समय में कारण में सब जगत् का होम करनेवाले हो, "रत्नधातमम्" रत्न अर्थात् रमणीय पृथिव्यादिकों के धारण, रचन करनेवाले तथा अपने सेवकों के लिये रत्नों के धारण करनेवाले एक आप ही हो। सर्वशक्तिमन् परमात्मन् ! इसलिए मैं वारंवार आपकी स्तुति करता हूं इसको आप स्वीकार कीजिये, जिससे हम लोग आपके कृपापात्र होके सदैव आनन्द में रहें ॥२॥

---

## मूल प्रार्थना

अ॒ग्निना॑ र॒यिम॑श्नव॒त्पोष॑मे॒व दि॒वेदि॑वे ।

य॒शसं॑ वी॒रव॑त्तमम् ॥ ३ ॥ ऋ० १ । १ । १ । ३ ॥

व्याख्यान—हे महादातः, ईश्वराग्ने ! आपकी कृपा से स्तुति करनेवाला मनुष्य "रयिम्" उस विद्यादि धन तथा सुवर्णादि धन को अवश्य प्राप्त होता है कि जो धन प्रतिदिन "पोषमेव" महापुष्टि करने और सत्कीर्ति को बढ़ानेवाला तथा जिससे विद्या, शौर्य्य, धैर्य्य, चातुर्य, बल, पराक्रम और दृढांग, धर्मात्मा, न्याययुक्त, अत्यन्त वीरपुरुष प्राप्त हों, वैसे सुवर्ण रत्नादि तथा चक्रवर्त्ती राज्य और विज्ञानरूप धन को मैं प्राप्त होऊं तथा आपकी कृपा से सदैव धर्मात्मा होके अत्यन्त सुखी रहूं ॥३॥

---

## मूल स्तुति

अ॒ग्निः पूर्वे॑भि॒र्ऋषि॑भि॒रीड्यो॒ नूत॑नैरु॒त ।

स दे॒वाँ एह व॑क्षति ॥ ४ ॥ ऋ० १ । १ । १ । २ ॥

व्याख्यान—हे सब मनुष्यों के स्तुति करने योग्य ईश्वराग्ने ! "पूर्वेभिः" विद्या पढ़े हुए प्राचीन "ऋषिभिः" मन्त्रार्थ देखनेवाले विद्वान् और "नूतनैः" वेदार्थ पढ़नेवाले नवीन ब्रह्मचारियों से "ईड्यः" स्तुति के योग्य "उत" और जो हम लोग मनुष्य, विद्वान् वा मूर्ख हैं उनसे भी अवश्य आप ही स्तुति के योग्य हो सो स्तुति को प्राप्त हुए आप हमारे और सब संसार के सुख के लिये दिव्यगुण अर्थात् विद्यादि को कृपा से प्राप्त करो, आप ही सबके इष्टदेव हो ॥४॥

---

## मूल स्तुति

अ॒ग्निर्होता॑ क॒विक्र॑तुः स॒त्यश्चि॒त्रश्र॑वस्तमः ।

दे॒वो दे॒वेभि॒रा ग॑मत् ॥ ५ ॥ ऋ० १ । १ । १ । ५ ॥

व्याख्यान—हे सर्वदृक् ! सबको देखनेवाले "क्रतुः" सब जगत् के जनक "सत्यः" अविनाशी अर्थात् कभी जिनका नाश नहीं होता "चित्रश्रवस्तमः" आश्चर्य्यश्रवणादि आश्चर्य्यगुण आश्चर्य्यशक्ति आश्चर्य्यरूपवान् और अत्यन्त उत्तम आप हो, जिन आपके तुल्य वा आप से बड़ा कोई नहीं है, हे जगदीश ! "देवेभिः" दिव्यगुणों के सह वर्त्तमान हमारे हृदय में आप प्रकट हो सब जगत् में भी प्रकाशित हों जिससे हम और हमारा राज्य दिव्यगुणयुक्त हो, वह राज्य आपका ही है, हम तो केवल आपके पुत्र तथा भृत्यवत् हैं ॥ ५ ॥

---

## मूल प्रार्थना

यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि ।

तवेत्तत्सत्यमङ्गिरः ॥ ६ ॥ ऋ० १ । १ । २ । १ ॥

व्याख्यान—हे "अङ्ग" मित्र ! जो आपको आत्मादि दान करता है, उसको 'भद्र" व्यावहारिक और पारमार्थिक सुख अवश्य देते हो, हे "अङ्गिरः" प्राण-प्रिय ! यह आपका सत्यव्रत है कि स्वभक्तों को परमानन्द देना, यही आपका स्वभाव हमको अत्यन्त सुखकारक है, आप मुझको ऐहिक और पारमार्थिक इन दोनों सुखों का दान शीघ्र दीजिये जिससे सब दुःख दूर हों, हमको सदा सुख ही रहे ॥६॥

---

## मूल स्तुति

वायवा याहि दर्शतेमे सोमा अरंकृताः ।

तेषां पाहि श्रुधी हवम् ॥ ७ ॥ ऋ० १ । १ । ३ । १ ॥

व्याख्यान—हे अनन्तबल परेश वायो दर्शनीय ! आप अपनी कृपा से ही हमको प्राप्त हो, हम लोगों ने अपनी अल्पशक्ति से सोम (सोमवल्ल्यादि) ओषधियों का उत्तम रस सम्पादन किया है और जो कुछ भी हमारे श्रेष्ठ पदार्थ हैं वे आप के लिये "अरङ्कृताः" अलङ्कृत अर्थात् उत्तम रीति से हमने बनाये हैं और वे सब आप के समर्पण किये गये हैं उनको आप स्वीकार करो (सर्वात्मा से पान करो) हम दोनों की दीनता सुनकर जैसे पिता को पुत्र छोटी चीज समर्पण करता है, उस पर पिता अत्यन्त प्रसन्न होता है, वैसे आप हम पर होओ ॥ ७ ॥

---

## मूल प्रार्थना

पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती ।

यज्ञं वष्टु धिया वसुः ॥ ८ ॥ ऋ० १ । १ । ६ । १० ॥

व्याख्यान—हे वाक्पते ! सर्वविद्यामय ! हमको आपकी कृपा से "सरस्वती" सर्वशास्त्रविज्ञानयुक्त वाणी प्राप्त हो "वाजेभिः" तथा उत्कृष्ट, अन्नादि के साथ वर्त्तमान "वाजिनीवती" सर्वोत्तम क्रिया विज्ञानयुक्त "पावका" पवित्रस्वरूप और पवित्र करनेवाली सत्यभाषणमय मङ्गलकारक वाणी आपकी प्रेरणा से प्राप्त होके आपके अनुग्रह से परमोत्तम बुद्धि के साथ वर्त्तमान "वसुः" निधिस्वरूप यह वाणी "यज्ञं वष्टु" सर्वशास्त्रबोध और पूजनीयतम आपके विज्ञान की कामनायुक्त सदैव हो, जिससे हमारी सब मूर्खता नष्ट हो और हम महापाण्डित्ययुक्त हों ॥ ८ ॥

---

## मूल स्तुति

पुरूतमं पुरूणामीशानं वार्य्याणाम् ।

इन्द्रं सोमे सचा सुते ॥ ९ ॥ ऋ० १।१।९।२॥

व्याख्यान—हे परात्पर परमात्मन्! आप "पुरूतमम्" अत्यन्तोत्तम और सर्वशत्रुविनाशक हो तथा बहुविध जगत् के पदार्थों के ईशान (स्वामी) और उत्पादक हो "वार्य्याणाम्" वर, वरणीय, परमानन्द मोक्षादि पदार्थों के भी ईशान हो "सोमे" और उत्पत्तिस्थान संसार आपसे उत्पन्न होने से "इन्द्रम्" परमैश्वर्यवान् आपको (अभिप्रगाय) हृदय में अत्यन्त प्रेम से गावें (यथावत्) स्तुति करें जिससे आपकी कृपा से हम लोगों का भी परमैश्वर्य बढ़ता जाय और परमानन्द को प्राप्त हों ॥ ९ ॥

---

## मूल प्रार्थना

तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियं जिन्वमवसे हूमहे वयम् ।

पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥ १० ॥

ऋ० १।६।१५।५॥

व्याख्यान—हे सर्वाधिस्वामिन्! आप ही चर और अचर जगत् के ईशान (रचनेवाले) हो "धियं जिन्वम्" सर्वविद्यामय विज्ञानस्वरूप बुद्धि को प्रकाशित करनेवाले प्रीणनीयस्वरूप "पूषा" सबके पोषक हो, उन आपका हम "नः अवसे" अपनी रक्षा के लिये "हूमहे" आह्वान करते हैं "यथा" जिस प्रकार से आप हमारे विद्यादि धनों की वृद्धि वा रक्षा के लिये "अदब्धः, रक्षिता" निरालस रक्षा करने में तत्पर हो वैसे ही कृपा करके आप "स्वस्तये" हमारी स्वस्थता के लिये "पायुः" निरन्तर रक्षक (विनाशनिवारक) हो, आपसे पालित हम लोग सदैव उत्तम कामों में उन्नति और आनन्द को प्राप्त हों ॥ १० ॥

---

## मूल स्तुति

अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे ।

पृथिव्याः सप्त धामभिः ॥ ११ ॥ ऋ० १।२।७।१६॥

व्याख्यान—हे "देवाः" विद्वानो! "विष्णुः" सर्वत्र व्यापक परमेश्वर ने सब जीवों को पाप तथा पुण्य का फल भोगने और सब पदार्थों के स्थित होने के लिये पृथिवी से लेके सप्तविध लोक "धामभिः" अर्थात् ऊँचे-नीचे स्थानों से संयुक्त बनाये तथा गायत्र्यादि सात छन्दों से विस्तृत विद्यायुक्त वेद को भी बनाया

उन लोकों के साथ वर्त्तमान व्यापक ईश्वर ने "यतः" जिस सामर्थ्य से सब लोकों को रचा है "अतः" (सामर्थ्यात्) उस सामर्थ्य से हम लोगों की रक्षा करें । हे विद्वानो ! तुम लोग भी उसी विष्णु के उपदेश से हमारी रक्षा करो, कैसा है वह विष्णु ? जिसने इस सब जगत् को "विचक्रमे" विविध प्रकार से रचा है, उसकी नित्य भक्ति करो ॥ ११ ॥

---

## मूल प्रार्थना

पाहि नो अग्ने रक्षसः पाहि धूर्तेरराव्णः ।
पाहि रीषत उत वा जिघांसतो बृहद्भानो यविष्ठ्य ॥ १२ ॥

ऋ० १ । ३ । १० । १५ ॥

व्याख्यान—हे सर्वशत्रुदाहकाग्ने परमेश्वर ! राक्षस हिंसाशील दुष्टस्वभाव देहधारियों से "नः" हमारी "पाहि" पालना करो "धूर्तेरराव्णः" कृपण जो धूर्त्त उस मनुष्य से भी हमारी रक्षा करो । जो हमको मारने लगे तथा जो मारने की इच्छा करता है, हे महातेज बलवत्तम ! उन सबसे हमारी रक्षा करो ॥ १२ ॥

---

## मूल स्तुति

त्वमस्य पारे रजसो व्योमनः स्वभूत्योजा अवसे धृषन्मनः ।
चकृषे भूमिं प्रतिमानमोजसोऽपः स्वः परिभूरेष्या दिवम् ॥ १३ ॥

ऋ०१ । ४ । १४ । १२ ॥

व्याख्यान—हे परमैश्वर्यवन् परमात्मन् ! आकाशलोक के पार में तथा भीतर अपने ऐश्वर्य और बल से विराजमान होके दुष्टों के मन को धर्षण तिरस्कार करते हुए सब जगत् तथा विशेष हम लोगों के "अवसे" सम्यक् रक्षण के लिये "त्वम्" आप सावधान हो रहे हो, इससे हम निर्भय होके आनन्द कर रहे हैं, किञ्च "दिवम्" परमाकाश "भूमिम्" भूमि तथा "स्वः" सुखविशेष मध्यस्थ-लोक इन सबों को अपने सामर्थ्य से ही रच के यथावत् धारण कर रहे हो "परिभूः एषि" सब पर वर्त्तमान और सबको प्राप्त हो रहे हो "आदिवम्" द्योतनात्मक सूर्यादि लोक "आपः" अन्तरिक्षलोक और जल इन सबके प्रतिमान (परिमाण) कर्त्ता आप ही हो, तथा आप अपरिमेय हो, कृपा करके हमको अपना तथा सृष्टि का विज्ञान दीजिये ॥ १३ ॥

---

## मूल प्रार्थना

विजा॑नी॒ह्यार्या॑न् ये च॒ दस्य॑वो ब॒र्हिष्म॑ते रन्धया॒ शास॑दव्र॒तान् ।
शाकी॑ भव॒ यज॑मानस्य चोदि॒ता विश्वेत्ता ते॑ सध॒मादे॑षु चाकन ॥ १४ ॥

ऋ० १ । ४ । १० । ८ ॥

व्याख्यान—हे यथायोग्य सबको जाननेवाले ईश्वर ! आप "आर्यान्" विद्या धर्मादि उत्कृष्ट स्वभावाचरणयुक्त आर्यों को जानो "ये च दस्यवः" और जो नास्तिक, डाकू, चोर, विश्वासघाती, मूर्ख, विषयलम्पट, हिंसादि दोषयुक्त उत्तम कर्म्म में विघ्न करनेवाले, स्वार्थी, स्वार्थ साधन में तत्पर वेदविद्याविरोधी, अनार्य (अनाड़ी) मनुष्य "बर्हिष्मते" सर्वोपकारक यज्ञ के विध्वंस करनेवाले हैं इन सब दुष्टों को आप "रन्धय" (समूलान् विनाशय) मूलसहित नष्ट कर दीजिये और "शासदव्रतान्" ब्रह्मचर्य्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासादि धर्म्मानुष्ठान-व्रतरहित वेदमार्गोच्छेदक अनाचारियों का यथायोग्य शासन करो (शीघ्र उन पर दण्ड निपातन करो) जिससे वे भी शिक्षायुक्त होके शिष्ट हों अथवा उनका प्राणान्त हो जाय किंवा हमारे वश में ही रहें "शाकी" तथा जीव को परम शक्तियुक्त शक्ति देने और उत्तम कामों में प्रेरणा करनेवाले हो, आप हमारे दुष्ट कामों से निरोधक हो, मैं भी "सधमा०" उत्कृष्ट स्थानों में निवास करता हुआ "विश्वेत्ता ते" तुम्हारी आज्ञानुकूल सब उत्तम कर्म्मों की "चाकन" कामना करता हूं, सो आप पूरी करें ॥ १४ ॥

---

## मूल स्तुति

न यस्य॒ द्यावा॑पृथि॒वी अनु॒ व्यचो॒ न सिन्ध॑वो॒ रज॑सो॒ अन्त॑मान॒शुः ।
नोत स्ववृ॑ष्टिं॒ मदे॑ अस्य॒ युध्य॑त॒ एको॑ अ॒न्यच्च॑कृ॒षे विश्व॑मानु॒षक् ॥ १५ ॥

ऋ० १ । ४ । १४ । १४ ॥

व्याख्यान—हे परमैश्वर्य्ययुक्तेश्वर ! आप इन्द्र हो, हे मनुष्यो ! जिस परमात्मा का अन्त इतना है यह न हो उसकी व्याप्ति का परिच्छेद (इयत्ता) परिमाण कोई नहीं कर सकता, तथा दिव अर्थात् सूर्य्यादिलोक सर्वोपरि आकाश तथा पृथिवी मध्य निकृष्टलोक ये कोई उसके आदि-अन्त को नहीं पाते क्योंकि "अनुव्यचः" वह सब के बीच में अनुस्यूत (परिपूर्ण) हो रहा है तथा "न सिन्धवः" अन्तरिक्ष में जो दिव्यजल तथा सब लोक, सो भी अन्त नहीं पा सकते "नोत स्ववृष्टिं मदे" वृष्टिप्रहार से युद्ध करता हुआ वृत्र (मेघ) तथा बिजुली गर्जन आदि भी ईश्वर का पार नहीं पा सकते* हे परमात्मन् ! आपका पार कौन

* जैसे कोई मद में मग्न होके रणभूमि में युद्ध करै, वैसे मेघ का दृष्टान्त जानना।

पा सके ? क्योंकि "एकः" एक (अपने से भिन्न सहायरहित) स्वसामर्थ्य से ही "विश्वम्" सब जगत् को "आनुषक्" आनुषक्त अर्थात् उसमें व्याप्त होते और "चकृषे" (कृतवान्) आपने ही उत्पन्न किया है; फिर जगत् के पदार्थ आपका पार कैसे पा सकें तथा (अन्यत्) आप जगत् रूप कभी नहीं बनते, न अपने में से जगत् को रचते हो किन्तु अनन्त अपने सामर्थ्य से ही जगत् का रचन, धारण और प्रलय यथाकाल में करते हो, इससे आपका सहाय हम लोगों को सदैव है ॥ १५ ॥

---

## मूल प्रार्थना

ऊर्ध्वो नः पाह्यंहसो नि केतुना विश्वं समत्रिणं दह ।
कृधी न ऊर्ध्वाञ्चरथाय जीवसे विदा देवेषु नो दुवः ॥ १६ ॥

ऋ० १ । ३ । १० । १४ ॥

व्याख्यान—हे सर्वोपरि विराजमान परब्रह्म ! आप ऊर्ध्व सबसे उत्कृष्ट हो, हमको कृपा से उत्कृष्ट गुणवाले करो तथा ऊर्ध्वदेश में हमारी रक्षा करो, हे सर्वपापप्रणाशकेश्वर ! हमको "केतुना" विज्ञान अर्थात् विविध विद्यादान देके "अंहसः" अविद्यादि महापाप से "नि पाहि" (नितराम्पाहि) सदैव अलग रक्खो तथा "विश्वम्" इस सकल संसार का भी नित्य पालन करो, हे सत्यमित्र न्याय-कारिन् ! जो कोई प्राणी "अत्रिणम्" हमसे शत्रुता करता है उसको और काम-क्रोधादि शत्रुओं को आप "सन्दह" सम्यक् भस्मीभूत करो (अच्छे प्रकार जलाओ) "कृधो न ऊर्ध्वान्" हे कृपानिधे ! हमको विद्या, शौर्य्य, धैर्य, बल, पराक्रम, चातुर्य, विविधधन, ऐश्वर्य, विनय, साम्राज्य, सम्मति, सम्प्रीति, स्वदेश-सुखसम्पादनादि गुणों में सब नर देहधारियों से अधिक उत्तम करो तथा "चरथाय, जीवसे" सबसे अधिक आनन्द, भोग, सब देशों में अव्याहतगमन (इच्छानुकूल) जाना-आना), आरोग्य देह, शुद्ध मानस-बल और विज्ञान इत्यादि के लिये हम को उत्तमता और अपनी पालनायुक्त करो "विदा" विद्यादि उत्तमोत्तम धन "देवेषु" विद्वानों के बीच में प्राप्त करो अर्थात् विद्वानों के मध्य में भी उत्तम प्रतिष्ठायुक्त सदैव हमको रक्खो ॥ १६ ॥

---

## मूल स्तुति

अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः ।
विश्वे देवा अदितिः पञ्चजना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् ॥ १७ ॥

ऋ० १ । ६ । १६ । १० ॥

व्याख्यान—हे त्रैकाल्याबाधेश्वर ! "अदितिर्द्यौः" आप सदैव विनाशरहित तथा स्वप्रकाशस्वरूप हो "अदितिरन्तरिक्षम्" अविकृत (विकार को न प्राप्त) और सबके अधिष्ठाता हो "अदितिर्माता" आप प्राप्त मोक्ष जीवों को अविनश्वर (विनाशरहित) सुख देने और अत्यन्त मान करनेवाले हो "स पिता" सो अविनाशीस्वरूप हम सब लोगों के पिता (जनक) और पालक हो और "स पुत्रः" सो ईश्वर आप मुमुक्षु धर्मात्मा विद्वानों को नरकादि दुःखों से पवित्र और त्राण (रक्षण) करनेवाले हो "विश्वे देवा अदितिः" सब दिव्यगुण (विश्व का धारण रचन, मारण, पालन आदि कार्यों को करनेवाले) आप अविनाशी परमात्मा ही हैं "पञ्चजना अदितिः" पञ्चप्राण जो जगत् के जीवन हेतु वे भी आप के रचे और आपके नाम भी हैं "जातमदितिः" वही एक चेतन ब्रह्म आप सदा प्रादुर्भूत हैं और सब कभी प्रादुर्भूत कभी अप्रादुर्भूत (अविनाशभूत) भी हो जाते हैं "अदितिर्जनित्वम्" वे ही अविनाशीस्वरूप ईश्वर आप सब जगत् के (जनित्वम्) जन्म का हेतु हैं, और कोई नहीं * ॥ १७ ॥

---

## मूल प्रार्थना

ऋजुनीती नो वरुणो मित्रो नयतु विद्वान् ।
अर्यमा देवैः सजोषाः ॥ १८ ॥ ऋ० १ । ६ । १७ । १ ॥

व्याख्यान—हे महाराजाधिराज परमेश्वर ! आप हमको "ऋजु०" सरल (शुद्ध) कोमलत्वादिगुणविशिष्ट चक्रवर्ती राजाओं की नीति को "नयतु" कृपा-दृष्टि से प्राप्त करो, आप "वरुणः" सर्वोत्कृष्ट होने से वरुण हो, सो हमको वरराज्य, वरविद्या, वरनीति देओ तथा सबके मित्र शत्रुतारहित हो, हमको भी आप मित्रगुणयुक्त न्यायाधीश कीजिये तथा आप सर्वोत्कृष्ट विद्वान् हो, हमको भी सत्यविद्या से युक्त सुनीति देके साम्राज्याधिकारी सद्यः कीजिये तथा आप "अर्य्यमा" (यमराज) प्रियाप्रिय को छोड़ के न्याय में वर्त्तमान हो सब संसार के जीवों के पाप और पुण्यों की यथायोग्य व्यवस्था करनेवाले हो सो हमको भी आप तादृश करें जिससे "देवैः सजोषाः" आपकी कृपा से विद्वानों वा दिव्यगुणों के साथ उत्तम प्रीतियुक्त आप में रमण और आपका सेवन करनेवाले हों, हे कृपासिन्धो भगवन् ! हम पर सहायता करो जिससे सुनीतियुक्त होके हमारा स्वराज्य अत्यन्त बढ़े ॥ १८ ॥

---

* ये सब नाम दिव आदि अन्य वस्तुओं के भी होते हैं परन्तु यहां ईश्वराभिप्रेत से अर्थ किया, सो सप्रमाण जानना चाहिये ।

## मूल प्रार्थना

त्वं सोमासि सत्पतिस्त्वं राजोत वृत्रहा ।

त्वं भद्रो असि क्रतुः ॥ १९ ॥ ऋ० १ । ६ । १९ । ५ ॥

व्याख्यान—हे सोम, राजन् सत्पते परमेश्वर ! तुम सोम, सबका सार निकालनेहारे प्राप्तस्वरूप, शान्तात्मा हो तथा सत्पुरुषों का प्रतिपालन करनेवाले हो, तुम्हीं सबके राजा "उत" और वृत्रहा" मेघ के रचक, धारक और मारक हो, भद्रस्वरूप भद्र करनेवाले और "क्रतुः" सब जगत् के कर्त्ता आप ही हो ॥ १९ ॥

---

## मूल प्रार्थना

त्वं नः सोम विश्वतो रक्षा राजन्नघायतः ।

न रिष्येत् त्वावतः सखा ॥ २० ॥ ऋ० १ । ६ । २० । ८ ॥

व्याख्यान—हे सोम राजन्नीश्वर ! तुम "अघायतः" जो कोई प्राणी हम में पापी और पाप करने की इच्छा करनेवाले हों "विश्वतः" उन सब प्राणियों से हमारी "रक्ष" रक्षा करो, जिसके आप सगे मित्र हो "न, रिष्येत्" वह कभी विनष्ट नहीं होता किन्तु हमको आपकी सहायता से तिलमात्र भी दुःख वा भय कभी नहीं होगा, जो आपका मित्र और जिसके आप मित्र हो, उसको दुःख क्यों कर हो ॥ २० ॥

---

## मूल प्रार्थना

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः ।

दिवीव चक्षुराततम् ॥ २१ ॥ ऋ० १ । २ । ७ । २० ॥

व्याख्यान—हे विद्वानो और मुमुक्षु जीवो ! विष्णु का जो परम अत्यन्तोत्कृष्ट पद (पदनीय) सबके जानने योग्य, जिसको प्राप्त हो के पूर्णानन्द में रहते हैं फिर वहां से शीघ्र दुःख में नहीं गिरते, उस पद को "सूरयः" धर्मात्मा जितेन्द्रिय, सब के हितकारक विद्वान् लोग यथावत् अच्छे विचार से देखते हैं, वह परमेश्वर का पद है किस दृष्टान्त से कि जैसे आकाश में चक्षु नेत्र की व्याप्ति वा सूर्य का प्रकाश सब ओर से व्याप्त है वैसे ही "दिवीव, चक्षुराततम्" परब्रह्म सब जगह में परिपूर्ण एकरस भर रहा है, वही परमपदस्वरूप परमात्मा परमपद है, इसी की प्राप्ति होने से जीव सब दुःखों से छूटता है, अन्यथा जीव को कभी परम सुख नहीं मिलता, इससे सब प्रकार परमेश्वर की प्राप्ति में यथावत् प्रयत्न करना चाहिये ॥ २१ ॥

---

## मूल प्रार्थना

स्थिरा वः सन्त्वायुधा पराणुदे वीळू उत प्रतिष्कभे ।
युष्माकमस्तु तविषी पनीयसी मा मर्त्यस्य मायिनः ॥ २२ ॥

ऋ० १ । ३ । १८ । २ ॥

व्याख्यान—(परमेश्वरो हि सर्वजीवेभ्य आशीर्ददाति) ईश्वर सब जीवों को आशीर्वाद देता है कि हे जीवो ! "वः" (युष्माकम्) तुम्हारे लिये आयुध अर्थात् शतघ्नी (तोप), भुशुण्डी (बंदूक), धनुष्, बाण, करवाल (तलवार) शक्ति (बरछी) आदि शस्त्र स्थिर और "वीळू" दृढ़ हों, किस प्रयोजन के लिये ? "पराणुदे" तुम्हारे शत्रुओं के पराजय के लिये, जिससे तुम्हारे कोई दुष्ट शत्रु लोग कभी दुःख न दे सकें "उत, प्रतिष्कभे" शत्रुओं के वेग को थांभने के लिये "युष्माकमस्तु, तविषी पनीयसी" तुम्हारी बलरूप उत्तम सेना सब संसार में प्रशंसित हो जिससे तुमसे लड़ने को शत्रु का कोई संकल्प भी न हो परन्तु "मा मर्त्यस्य मायिनः" जो अन्यायकारी मनुष्य है उसको हम आशीर्वाद नहीं देते । दुष्ट, पापी, ईश्वरभक्तिरहित मनुष्य का बल और राज्यैश्वर्यादि कभी मत बढ़ो, उसका पराजय ही सदा हो, हे बन्धुवर्गो ! आओ अपने सब मिलके सर्व दुःखों का विनाश और विजय के लिये ईश्वर को प्रसन्न करें । जो अपने को वह ईश्वर आशीर्वाद देवे, जिससे अपने शत्रु कभी न बढ़ें ॥ २२ ॥

---

## मूल स्तुति

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे ।
इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ २३ ॥ ऋ० । १ । २ । ७ । १९ ॥

व्याख्यान—हे जीवो ! "विष्णोः" व्यापकेश्वर के किये दिव्य जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय आदि कर्मों को तुम देखो (प्रश्न) किस हेतु से हम लोग जानें कि व्यापक विष्णु के कर्म्म हैं ? (उत्तर) "यतो व्रतानि पस्पशे" जिससे हम लोग ब्रह्मचर्यादि व्रत तथा सत्यभाषणादि व्रत और ईश्वर के नियमों का अनुष्ठान करने को जीव सुशरीरधारी हो के समर्थ हुए हैं । यह काम उसी के सामर्थ्य से है, क्योंकि "इन्द्रस्य, युज्यः, सखा" इन्द्रियों के साथ वर्त्तमान कर्मों का कर्त्ता, भोक्ता जो जीव इसका वही एक योग्य मित्र है, अन्य कोई नहीं क्योंकि ईश्वर जीव का अन्तर्यामी है, उससे परे जीव का हितकारी कोई और नहीं हो सकता, इससे परमात्मा से सदा मित्रता रखनी चाहिये ॥ २३ ॥

---

## मूल प्रार्थना

परांणुदस्व मघवन्नमित्रान्त्सुवेदा नो वसू कृधि ।
अस्माकं बोध्यविता महाधने भवा वृधः सखीनाम् ॥ २४ ॥

ऋ० ५ । ३ । २१ । २५ ॥

व्याख्यान—हे मघवन् परमैश्वर्यवन् इन्द्र परमात्मन्! "अमित्रान्" हमारे सब शत्रुओं को "पराणुदस्व" परास्त कर दे। हे दातः! "सुवेदा, नो, वसू, कृधि" "अस्माकं, बोध्यविता" हमारे लिये सब पृथिवी के धन सुलभ कर "महाधने" युद्ध में हमारे और हमारे मित्र तथा सेनादि के "अविता" रक्षक "वृधः" वर्द्धक "भव" आप ही हो तथा "बोधि" हमको अपने ही जानो, हे भगवन्! जब आप हमारे रक्षक योद्धा होंगे, तभी हमारा सर्वत्र विजय होगा, इसमें संदेह नहीं ॥ २४ ॥

## मूल प्रार्थना

शं नो भगः शमु नः शंसो अस्तु शं नः पुरन्धिः शमु सन्तु रायः ।
शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शं नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु ॥२५॥

ऋ० ५ । ३ । २८ । २ ॥

व्याख्यान—हे ईश्वर! "भगः" आप और आपका दिया हुआ ऐश्वर्य "शंनः" हमारे लिये सुखकारक हो और "शमु, नः, शंसो अस्तु" आपकी कृपा से हमारी सुखकारक प्रशंसा सदैव हो "पुरन्धिः, शमु, सन्तु, रायः" संसार के धारण करनेवाले आप तथा वायु प्राण और सब धन आनन्ददायक हों "शं नः, सत्यस्य" सत्य यथार्थ धर्म सुसंयम और जितेन्द्रियादि लक्षणयुक्त जो प्रशंसा (पुण्यस्तुति) सब संसार में प्रसिद्ध है वह परमानन्द और शान्तियुक्त हमारे लिये हो "शं, नो, अर्यमा" न्यायकारी आप "पुरुजातः" अनन्तसामर्थ्ययुक्त हमारे कल्याणकारक होओ ॥ २५ ॥

## मूल स्तुति

त्वमसि प्रशस्यो विदथेषु सहन्त्य ।
अग्ने रथीरध्वराणाम् ॥ २६ ॥ ऋ० ५ । ८ । ३५ । २ ॥

व्याख्यान—हे "अग्ने" सर्वज्ञ! तू ही सर्वज्ञ "प्रशस्यः" स्तुति करने के योग्य है अन्य कोई नहीं "विदथेषु" यज्ञ और युद्धों में आप ही स्तोतव्य हो, जो तुम्हारी स्तुति को छोड़ के अन्य जड़ादि की स्तुति करता है उसके यज्ञ तथा

युद्धों में विजय कभी सिद्ध नहीं होता है "सहन्त्य" शत्रुओं के समूहों के आप ही घातक हो "रथीः" अध्वरों अर्थात् यज्ञ और युद्धों में आप ही रथी हो। हमारे शत्रुओं के योद्धाओं को जीतनेवाले हो, इस कारण से हमारा पराजय कभी नहीं हो सकता ॥ २६ ॥

---

## मूल प्रार्थना

तन्न इन्द्रो वरुणो मित्रो अग्निराप ओषधीर्वनिनो जुषन्त ।
शर्मन्त्स्याम मरुतामुपस्थे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ २७ ॥

ऋ० ५ । ३ । २७ । २५ ॥

व्याख्यान—हे भगवन्! "तन्न इन्द्रः" सूर्य "वरुणः" चन्द्रमा "मित्रः" वायु "अग्निः" अग्नि "आपः" जल "ओषधिः" वृक्षादि वनस्थ सब पदार्थ आपकी आज्ञा से सुखरूप होकर हमारा सेवन करें, हे रक्षक! "मरुतामुपस्थे" प्राणादि पवनों के गोद में बैठे हुए हम आपकी कृपा से "शर्मन्त्स्याम" सुखयुक्त सदा रहें "स्वस्तिभिः" सब प्रकार के रक्षणों से "यूयं, पात" (आदरार्थं बहुवचनम्) आप हमारी रक्षा करो, किसी प्रकार से हमारी हानि न हो ॥ २७ ॥

---

## मूल स्तुति

ऋषिर्हि पूर्वजा अस्येक ईशान ओजसा ।
इन्द्र चोष्क्रूयसे वसु ॥ २८ ॥ ऋ० ५ । ८ । १७ । ४१ ॥

व्याख्यान—हे ईश्वर ! "ऋषिः" सर्वज्ञ "पूर्वजाः" और सबके पूर्वजों के एक अद्वितीय "ईशानः" ईशनकर्त्ता अर्थात् ईश्वरता करनेहारे ईश्वर तथा सबसे बड़े प्रलयोत्तरकाल में आप ही रहनेवाले "ओजसा" अनन्त पराक्रम से युक्त हो, हे इन्द्र महाराजाधिराज ! "चोष्कूयसे वसु" सब धन के दाता, शीघ्र कृपा का प्रवाह अपने सेवकों पर कर रहे हो, आप अत्यन्त आर्द्रस्वभाव हो ॥ २८ ॥

---

## मूल प्रार्थना

नेह भद्रं रक्षस्विने नावयै नोपया उत ।
गवे च भद्रं धेनवे वीराय च श्रवस्यतेऽनेहसो व ऊतयः
सु ऊतयो व ऊतयः ॥ २९ ॥ ऋ० ६ । ४ । ९ । १२ ॥

व्याख्यान—हे भगवन्! "रक्षस्विने, भद्रं, नेह" पापी हिंसक दुष्टात्मा को इस संसार में सुख मत देना "नावयै" धर्म से विपरीत चलनेवाले को सुख कभी मत हो तथा "नोपया, उत" अधर्मी के समीप रहनेवाले उसके सहायक को भी सुख नहीं हो ऐसी प्रार्थना आप से हमारी है कि दुष्ट को सुख कभी न होना चाहिये, नहीं तो कोई जन धर्म में रुचि नहीं करेगा किन्तु इस संसार में धर्मात्माओं को ही सुख सदा दीजिये तथा हमारी शमदमादियुक्त इन्द्रियां दुग्ध, देनेवाली गौ आदि वीरपुत्र और शूरवीर भृत्य, "अवस्यते" विद्या, विज्ञान और अन्नाद्यैश्वर्ययुक्त हमारे देश के राजा और धनाढ्य जन तथा इनके लिये "अनेहसः" निष्पाप, निरुपद्रव, स्थिर, दृढ़ सुख हो "व ऊतयो व ऊतयः" (वः युष्माकं बहुवचनमादरार्थम्) हे सर्वरक्षकेश्वर! आप सर्वरक्षण अर्थात् पूर्वोक्त सब धर्मात्माओं की रक्षा करनेहारे हैं। जिन पर आप रक्षक हो, उनको सदैव भद्र कल्याण (परमसुख) प्राप्त होता है, अन्य को नहीं ॥ २९ ॥

---

## मूल स्तुति

वसुर्वसुपतिर्हि कमस्यग्ने विभावसुः ।
स्याम ते सुमतावपि ॥ ३० ॥ ऋ० ६ । ३ । ४० । २४ ॥

व्याख्यान—हे परमात्मन्! आप वसु अर्थात् सबको अपने में वसानेवाले और सब में आप वसनेवाले हो तथा "वसुपतिः" पृथिव्यादि वास हेतुभूतों के पति हो "कमसि" हे अग्ने विज्ञानानन्द स्वप्रकाशस्वरूप! आप ही सबके सुखकारक और सुखस्वरूप हो तथा "विभावसुः" सत्यस्वप्रकाशक धनमय हो, हे भगवन्! ऐसे जो आप उन "ते" आपकी "सुमतौ" अत्यन्तोत्कृष्टज्ञान और परस्पर प्रीति में हम लोग स्थिर हों ॥ ३० ॥

---

## मूल प्रार्थना

वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम राजा हि कं भुवनानामभिश्रीः ।
इतो जातो विश्वमिदं विचष्टे वैश्वानरो यतते सूर्येण ॥ ३१ ॥

ऋ० १ । ७ । ६ । १ ॥

व्याख्यान—हे मनुष्यो! जो हमारा तथा सब जगत् का राजा, सब भुवनों का स्वामी "कम्" सबका सुखदाता और "अभिश्रीः" सबका निधि (शोभाकारक) है, "वैश्वानरो, यतते, सूर्येण" संसारस्थ सब नरों का नेता (नायक) और सूर्य के साथ वही प्रकाशक है अर्थात् सब प्रकाशक पदार्थ उसके रचे हैं "इतो

जातो विश्वमिदं विचष्टे" इसी ईश्वर के सामर्थ्य से ही यह संसार उत्पन्न हुआ है अर्थात् उसने रचा है, "वैश्वानरस्य सुमतौ, स्याम" उस वैश्वानर परमेश्वर की 'सुमतौ' अर्थात् सुशोभन (उत्कृष्ट) ज्ञान में हम निश्चित सुखस्वरूप और विज्ञानवाले हों, हे महाराजाधिराजेश्वर ! आप इस हमारी आशा को कृपा से पूरी करो ।। ३१ ।।

---

## मूल स्तुति

न यस्य॑ देवा दे॒वता॒ न मर्त्ता॒ आप॑श्च॒ न शव॑सो॒ अन्त॑मा॒पुः ।

स प्र॒रिक्वा॒ त्वक्ष॑सा॒ क्ष्मो दि॒वश्च॑ म॒रुत्वा॑न्नो भव॒त्विन्द्र॑ ऊ॒ती ॥ ३२ ॥

ऋ० १ । ७ । १० । १५ ॥

व्याख्यान—हे अनन्तबल ! "न यस्य" जिस परमात्मा का और उसके बलादि सामर्थ्य का "देवाः" इन्द्रिय "देवता" विद्वान् सूर्यादि बुद्धचादि "न, मर्त्ताः" साधारण मनुष्य "आपश्च न" आप, प्राण, वायु, समुद्र इत्यादि सब अन्त (पार) कभी नहीं पा सकते किन्तु "प्ररिक्वा" प्रकृष्टता से इनमें व्यापक होके अतिरिक्त (इनसे विलक्षण), भिन्न ही परिपूर्ण हो रहा है, सो "मरुत्वान्" अत्यन्त बलवान् इन्द्र परमात्मा "त्वक्षसा" शत्रुओं के बल का छेदक बल से "क्ष्मः" पृथिवी को 'दिवश्च" स्वर्ग को धारण करता है, सो "इन्द्रः" परमात्मा "ऊती" हमारी रक्षा के लिये "भवतु" तत्पर हो ।। ३२ ।।

---

## मूल प्रार्थना

जा॒तवे॑दसे सुनवाम॒ सोम॑मराती॒यतो नि द॑हाति॒ वेद॑ः ।

स नः॑ पर्ष॒दति॑ दु॒र्गाणि॒ विश्वा॑ ना॒वेव॒ सिन्धुं॑ दुरि॒तात्य॒ग्निः ॥ ३३ ॥

ऋ० १ । ७ । ७ । १ ॥

व्याख्यान—हे "जातवेदः" परब्रह्मन् ! आप जातवेद हो, उत्पन्नमात्र सब जगत् को जाननेवाले हो, सर्वत्र प्राप्त हो, जो विद्वानों से ज्ञात सब में विद्यमान ('जात' अर्थात् प्रादुर्भूत अनन्त धनवान् वा अनन्त ज्ञानवान् हो, इससे आपका नाम जातवेद है) उन आपके लिये "वयं, सोमं, सुनवाम" जितने सोम प्रिय गुणविशिष्टादि हमारे पदार्थ हैं, वे सब अर्पित हैं, सो आप हे कृपालो ! "अरातीयतः" दुष्ट शत्रु जो हम धर्मात्माओं का विरोधी उसके "वेद" धनैश्वर्यादि का "नि दहाति" नित्य दहन करो जिससे वह दुष्टता को छोड़ के श्रेष्ठता को स्वीकार करे तथा "नः" हम को "दुर्गाणि, विश्वा" सम्पूर्ण दुस्सह दुःखों से "पर्षदति" पार करके आप नित्य सुख को प्राप्त करो, "नावेव, सिन्धुम्" जैसे अति कठिन

नदी वा समुद्र से पार होने के लिये नौका होती है, "दुरितात्यग्निः" वैसे ही हम को सब पापजनित अत्यन्त पीड़ाओं से पृथक् (भिन्न) करके संसार में और मुक्ति में ही परमसुख को शीघ्र प्राप्त करो ।। ३३ ।।

---

## मूल स्तुति

स वज्रभृद्दस्युहा भीम उग्रः सहस्रचेताः शतनीथ ऋभ्वा ।
चम्रीषो न शवसा पाञ्चजन्यो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ।। ३४ ।।

ऋ० १ । ७ । १० । १२ ।।

व्याख्यान—हे दुष्टनाशक परमात्मन् ! आप "वज्रभृत्" अच्छेद्य (दुष्टों के छेदक) सामर्थ्य से सर्वशिष्ट हितकारक दुष्टविनाशक जो न्याय उसको धारण कर रहे हो, "प्राणो वा वज्रः" इत्यादि शतपथादि का प्रमाण है। अत एव "दस्युहा" दुष्ट पापी लोगों का हनन करने वाले हो, "भीमः" आपकी न्याय आज्ञा को छोड़ने वालों पर भयङ्कर भय देने वाले हो। "सहस्रचेताः" सहस्रों विज्ञानादि गुण वाले आप ही हो, "शतनीथः" सैकड़ों असङ्ख्यात पदार्थों की प्राप्ति कराने वाले हो, "ऋभ्वा" अत्यन्त विज्ञानादि प्रकाश वाले हो और सबके प्रकाशक हो तथा महान् वा महाबल वाले हो। "न, चम्रीषः" किसी की चमू (सेना) में वश को प्राप्त नहीं होते हो। "शवसा, पाञ्चजन्यः" स्वबल से आप पाञ्चजन्य (पांच प्राणों के) जनक हो। "मरुत्वान्" सब प्रकार के वायुओं के आधार तथा चालक हो सो आप "इन्द्रः" हमारी रक्षा के लिये प्रवृत्त हों, जिससे हमारा कोई काम न बिगड़े ।। ३४ ।।

---

## मूल प्रार्थना

सेमं नः काममापृण गोभिरश्वैः शतक्रतो ।
स्तवाम त्वा स्वाध्यः ।। ३५ ।। ऋ० १ । १ । ३१ । ९ ।।

व्याख्यान—हे "शतक्रतो" अनन्त क्रियेश्वर ! आप असङ्ख्यात विज्ञानादि यज्ञों से प्राप्य हो तथा अनन्तक्रियाबलयुक्त हो, सो आप "गोभिरश्वैः" गाय, उत्तम इन्द्रिय, श्रेष्ठ पशु, सर्वोत्तम अश्वविद्या (विमानादि युक्त) तथा 'अश्व' अर्थात् श्रेष्ठ घोड़ादि पशुओं और चक्रवर्ती राज्यैश्वर्य्य से "सेमं, नः, काममापृण" हमारे काम को परिपूर्ण करो। फिर हम भी "स्तवाम, त्वा, स्वाध्यः" सुबुद्धियुक्त हो के उत्तम प्रकार से आपका स्तवन (स्तुति) करें। हमको दृढ़ निश्चय है कि आपके विना दूसरा कोई किसी का काम पूर्ण नहीं कर सकता। आपको छोड़ के दूसरे का ध्यान वा याचना जो करते हैं, उनके सब काम नष्ट हो जाते हैं ।। ३५ ।।

---

## मूल स्तुति

सोम॑ गी॒र्भिष्ट्वा॑ व॒यं व॒र्द्धया॑मो वचो॒विदः॑ ।

सु॒मृ॒ळी॒को न आ वि॑श ॥ ३६ ॥ ऋ० १ । ६ । २१ । ११ ॥

व्याख्यान—हे "सोम" सर्वजगदुत्पादकेश्वर ! आपको "वचोविदः" शास्त्रवित् हम लोग स्तुतिसमूह से "वर्द्धयामः" सर्वोपरि विराजमान मानते हैं । "सुमृळीको, नः, आविश" क्योंकि हमको सुन्दर सुख देने वाले आप ही हो, सो कृपा करके हमको आप आवेश करो, जिससे हम लोग अविद्या अन्धकार से छूट और विद्या सूर्य को प्राप्त होके आनन्दित हों ॥ ३६ ॥

---

## मूल प्रार्थना

सोम॑ रार॒न्धि नो॑ हृ॒दि गावो॒ न यव॑से॒ष्वा ।

मर्य॑ इव॒ स्व ओ॒क्ये॑ ॥ ३७ ॥ ऋ० । १ । ६ । २१ । १३ ॥

व्याख्यान—हे "सोम" सोम्य सौख्यप्रदेश्वर ! आप कृपा करके "रारन्धि, नो, हृदि" हमारे हृदय में यथावत् रमण करो । (दृष्टान्त) जैसे सूर्य्य की किरण, विद्वानों का मन और गाय, पशु अपने-अपने विषय और घासादि में रमण करते है* वा जैसे "मर्य्य, इव, स्वे, ओक्ये" मनुष्य अपने घर में रमण करता है वैसे ही आप सदा स्वप्रकाशयुक्त हमारे हृदय (आत्मा) में रमण कीजिये, जिससे हमको यथार्थ सर्वज्ञान और आनन्द हो ॥ ३७ ॥

---

## मूल स्तुति

ग॒य॒स्फानो॑ अमीव॒हा व॑सु॒वित्पु॑ष्टि॒वर्द्ध॑नः ।

सु॒मि॒त्रः सो॑म नो भव ॥ ३८ ॥ ऋ० १ । ६ । २१ । १२ ॥

व्याख्यान—हे परमात्मभक्त जीवो ! अपना इष्ट जो परमेश्वर सो "गयस्फानः" प्रजा, धन, जनपद और सुराज्य का बढ़ाने वाला है तथा "अमीवहा" शारीर, इन्द्रिय-जन्य और मानस रोगों का हनन (विनाश) करनेवाला है । "वसुवित्" सब पृथिव्यादि वसुओं का जानने वाला है अर्थात् सर्वज्ञ और विद्यादि धन का दाता है । "पुष्टिवर्धनः" अपने शरीर इन्द्रिय, मन और आत्मा की पुष्टि को बढ़ाने वाला है । "सुमित्रः" सोम, नः, भव" सुन्दर यथावत् सबका परममित्र वही है सो अपने उससे यह मांगें कि हे सोम सर्वजगदुत्पादक ! आप ही कृपा करके हमारे सुमित्र हो और हम भी सब जीवों के मित्र हों तथा अत्यन्त मित्रता आप से ही रक्खें ॥ ३८ ॥

---

* दृष्टान्त का एकदेश रमणमात्र लेना ।

## मूल प्रार्थना

त्वं हि विश्वतोमुख विश्वतः परिभूरसि ।
अप नः शोशुचदघम् ॥ ३९ ॥ ऋ० १ । ७ । ५ । ६ ॥

व्याख्यान—हे अग्ने परमात्मन् ! "त्वं हि" तू ही "विश्वतः परिभूरसि" सब जगत् सब ठिकानों में व्याप्त हो अत एव आप विश्वतोमुख हो । हे सर्वतोमुख अग्ने ! आप स्वशक्ति से सब जीवों के हृदय में सत्योपदेश नित्य ही कर रहे हो, वही आप का मुख है । हे कृपालो ! "अप, नः, शोशुचदघम्" आपकी इच्छा से हमारा पाप सब नष्ट हो जाय, जिससे हम लोग निष्पाप हो के आपकी भक्ति और आज्ञापालन में नित्य तत्पर रहें ॥ ३९ ॥

---

## मूल स्तुति

तमीळत प्रथमं यज्ञसाधं विश आरीराहुतमृञ्जसानम् ।
ऊर्जः पुत्रं भरतं सृप्रदानुं देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥ ४० ॥

ऋ० १ । ७ । ३ । ३ ॥

व्याख्यान—हे मनुष्यो ! "तमीळत" उस अग्नि की स्तुति करो, कि जो "प्रथमम्" सब कार्यों से पहिले वर्त्तमान और सबका आदि कारण है तथा "यज्ञसाधम्" सब संसार और विज्ञानादि यज्ञ का साधक (सिद्ध करने वाला) सबका जनक है । हे "विशः" मनुष्यो ! उसको ही स्वामी मानकर "आरीः" प्राप्त होओ, जिसको अपने दीनता से पुकारते, विज्ञानादि से विद्वान् लोग सिद्ध करते और जानते हैं । "ऊर्जः पुत्रं, भरतम्" पृथिव्यादि जगत् रूप अन्न का 'पुत्र' अर्थात् पालन करने वाला तथा 'भरत' अर्थात् उसी अन्न का पोषण और धारण करने वाला है । "सृप्रदानुम्" सब जगत् को चलने की शक्ति देने वाला और ज्ञान का दाता है, उसी को "देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम्" देव (विद्वान् लोग) अग्नि कहते और धारण करते हैं, वही सब जगत् को 'द्रविण' अर्थात् निर्वाह के सब अन्न-जलादि पदार्थ और विद्यादि पदार्थों का देने वाला है । उस अग्नि परमात्मा को छोड़ के अन्य किसी की भक्ति वा याचना कभी किसी को न करनी चाहिये ॥ ४० ॥

---

## मूल प्रार्थना

तमूतयो रणयञ्छूरसातौ तं क्षेमस्य क्षितयः कृण्वत त्राम् ।
स विश्वस्य करुणस्येश एको मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ४१ ॥

ऋ० १ । ७ । ९ । ७ ॥

व्याख्यान—हे मनुष्यो ! "तमूतयः" उसी इन्द्र परमात्मा की प्रार्थना तथा शरणागति से अपने को "ऊतयः" अनन्त रक्षण तथा बलादि गुण प्राप्त होंगे। "शूरसातौ" युद्ध में अपने को यथावत् "रणयन्" रमण और रणभूमि में शूरवीरों के गुण परस्पर प्रीत्यादि प्राप्त करावेगा। "तं क्षेमस्य, क्षितयः" हे शूरवीर मनुष्यो ! उसी को क्षेम कुशलता का "त्राम्" रक्षक "कृण्वत" करो, जिससे अपना पराजय कभी न हो। क्योंकि "सः, विश्वस्य" सो करुणामय सब जगत् पर करुणा करने वाला "एकः" एक ही है अन्य कोई नहीं, सो परमात्मा "मरुत्वान्" प्राण, वायु, बल, सेनायुक्त "ऊती" (ऊतये) सम्यक् हम लोगों पर कृपा से रक्षक हो, ईश्वर से रक्षित हम लोग कभी पराजय को न प्राप्त हों ॥ ४१ ॥

---

## मूल स्तुति

स पूर्व्या निविदा कव्यतायोरिमाः प्रजा अजनयन्मनूनाम् ।
विवस्वता चक्षसा द्यामपश्च देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥ ४२ ॥

ऋ० १ । ७ । ३ । २ ॥

व्याख्यान—हे मनुष्यो ! सो ही "पूर्व्या", "निविदा" आदि सनातन, सत्यता आदि गुणयुक्त परमात्मा था, अन्य कोई [सृष्टिकर्त्ता] नहीं था। तब सृष्टि के आदि में स्वप्रकाशस्वरूप एक ईश्वर ने प्रजा की उत्पत्ति की ईक्षणता (विचार) [और] सर्वज्ञतादि सामर्थ्य से सत्यविद्यायुक्त वेदों की, तथा "मनूनां" मननशील मनुष्यों की, तथा पशु-वृक्षादि की "प्रजाः" प्रजा को "अजनयत्" उत्पन्न किया—परस्पर मनुष्य और पशु के व्यवहार चलने के लिये। परन्तु मननशील मनुष्यों को अवश्य स्तुति करने योग्य वही है। "विवस्वता चक्षसा" सूर्यादि तेजस्वी सब पदार्थों का प्रकाशने वाला, बल से, स्वर्ग (सुखविशेष) सब लोक "अपः" अन्तरिक्ष में पृथिव्यादि मध्यम लोक और निकृष्ट दुःखविशेष नरक और सब दृश्यमान तारे आदि लोक उसी ने रचे हैं। जो ऐसा सच्चिदानन्दस्वरूप परमेश्वर देव है, उसी "द्रविणोदाम्" विज्ञानादि धन देने वाले को ही "देवाः" [विद्वान् लोग] अग्नि जानते हैं। हम लोग उसी को भजें ॥ ४२ ॥

---

## मूल प्रार्थना

वयं जयेम त्वया युजा वृतमस्माकमंशमुदवा भरेभरे ।
अस्मभ्यमिन्द्र वरिवः सुगं कृधि प्र शत्रूणां मघवन्वृष्ण्या रुज ॥ ४३ ॥

ऋ० १ । ७ । १४ । ४ ॥

व्याख्यान—हे इन्द्र परमात्मन् ! 'त्वया, युजा, वयं, जयेम" आपके साथ वर्त्तमान आपके सहाय से हम लोग दुष्ट शत्रुजन को जीतें, कैसा वह शत्रु ! कि "आवृतम्" हमारे बल से घेरा हुआ। हे महाराजाधिराजेश्वर ! "भरे भरे अस्माकमं

शमुदया" युद्ध-युद्ध में हमारे अंश (बल) सेना का "उदवा" उत्तम रीति से कृपा करके रक्षण करो, जिससे किसी युद्ध में क्षीण होके हम पराजय को न प्राप्त हों किन्तु जिनको आपकी सहायता है उनका सर्वत्र विजय होता ही है। हे "इन्द्रमघवन्" महाधनेश्वर ! "शत्रूणां, वृष्ण्या" हमारे शत्रुओं के वीर्य्य पराक्रमादि को "प्ररुज" प्रभग्न रुग्ण करके नष्ट कर दे। "अस्मभ्यमिन्द्र वरिवः, सुगं, कृधि" हमारे लिये चक्रवर्ती राज्य और साम्राज्य धन को "सुगम्" सुख से प्राप्त कर अर्थात् आपकी करुणा से हमारा राज्य और धन सदा वृद्धि को प्राप्त हो ।। ४३ ।।

---

## मूल स्तुति

यो विश्वस्य जगतः प्राणतस्पतिर्यो ब्रह्मणे प्रथमो गा अविन्दत् ।
इन्द्रो यो दस्यूँरधराँ अवातिरन्मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ।। ४४ ।।

ऋ० १ । ७ । १२ । ५ ।।

व्याख्यान—हे मनुष्यो ! जो सब जगत् (स्थावर) जड़ अप्राणी का और "प्राणतः" चेतना वाले जगत् का "पतिः" अधिष्ठाता और पालक है, तथा जो सब जगत् के प्रथम सदा से है और "ब्राह्मणे, गा, अविन्दत्" जिसने यही नियम किया है कि 'ब्रह्म' अर्थात् विद्वान् के ही लिये पृथिवी का लाभ और उसका राज्य है। और जो "इन्द्रः" परमैश्वर्यवान् परमात्मा, डाकुओं को "अधरान्" नीचे गिराता है तथा उनको मार ही डालता है, "मरुत्वन्तं सख्याय, हवामहे" आओ मित्रो भाई लोगो ! अपने सब संप्रीति से मिल के 'मरुत्वान्' अर्थात् परमानन्त, बल वाले इन्द्र परमात्मा को सखा होने के लिये अत्यन्त प्रार्थना से गद्गद् हो के बुलावें, वह शीघ्र ही कृपा करके अपने से सखित्व (परममित्रता) करेगा, इसमें कुछ सन्देह नहीं ।।४४।।

---

## मूल प्रार्थना

मृळा नो रुद्रोत नो मयस्कृधि क्षयद्वीराय नमसा विधेम ते ।
यच्छं च योश्च मनुरायेजे पिता तदश्याम तव रुद्र प्रणीतिषु ।। ४५ ।।

ऋ० १ । ८ । ५ । २ ।।

व्याख्यान—हे दुष्टों को रुलानेहारे रुद्रेश्वर ! हमको "मृड" सुखी कर तथा "मयस्कृधि" हमको 'मय' अर्थात् अत्यन्त सुख का सम्पादक कर। "क्षयद्वीराय, नमसा, विधेम, ते" शत्रुओं के वीरों का क्षय करने वाले अत्यन्त नमस्कारादि से आपकी परिचर्या करने वाले हम लोगों का रक्षण यथावत् कर "यच्छम्" हे रुद्र ! आप हमारे पिता (जनक) और पालक हो, हमारी सब प्रजा को सुखी कर, "योश्च" प्रजा के रोगों का भी नाश कर। जैसे "मनुः" मान्यकारक पिता "आयेजे" स्वप्रजा को संगत और अनेकविध लाड़न करता है वैसे आप हमारा पालन करो। हे रुद्र भगवन् ! "तव,

प्रणीतिषु" आपकी आज्ञा का 'प्रणय' अर्थात् उत्तम न्याययुक्त नीतियों में प्रवृत्त होके "तदश्याम" वीरों के चक्रवर्त्ती राज्य को आपके अनुग्रह से प्राप्त हों ।। ४५ ।।

---

## मूल स्तुति

देवो न यः पृथिवीं विश्वधाया उपक्षेति हितमित्रो न राजा ।
पुरःसदः शर्मसदो न वीरा अनवद्या पतिजुष्टेव नारी ।। ४६ ।।

ऋ० १ । ५ । १९ । ३ ।।

व्याख्यान—हे प्रियबन्धु विद्वानो ! "देवो, न" ईश्वर सब जगत् के बाहर और भीतर सूर्य के समान प्रकाश कर रहा है, "यः, पृथिवीम्" जो पृथिव्यादि जगत् को रच के धारण कर रहा है और "विश्वधायाः, उपक्षेति" विश्वधारक शक्ति का भी निवास देने और धारण करने वाला है तथा जो सब जगत् का परममित्र अर्थात् जैसे "प्रियमित्रो, न, राजा" प्रियमित्रवान् राजा अपनी प्रजा का यथावत् पालन करता है वैसे ही हम लोगों का पालनकर्त्ता वही एक है, अन्य कोई भी नहीं । "पुरः सदः, शर्मसदो न, वीराः" जो जन ईश्वर के पुरःसद हैं (ईश्वराभिमुख ही हैं) वे ही शर्मसदः अर्थात् सुख में सदा स्थिर रहते हैं । जैसे "न वीराः" पुत्र लोग अपने पिता के घर में आनन्दपूर्वक निवास करते हैं वैसे ही जो परमात्मा के भक्त हैं वे सदा सुखी रहते हैं, परन्तु जो अनन्यचित्त होके निराकार सर्वत्र व्याप्त ईश्वर की सत्य श्रद्धा से भक्ति करते हैं जैसे कि "अनवद्या, पतिजुष्टेव, नारी" अत्यन्तोत्तमगुणयुक्त पति की सेवा में तत्पर पतिव्रता नारी (स्त्री) रात-दिन तन, मन, धन और अतिप्रेम से अनुकूल ही रहती है, वैसे प्रेमप्रीतियुक्त होके आओ भाई लोगो ! ईश्वर की भक्ति करें और अपने सब मिल के परमात्मा से परमसुख लाभ उठावें ।। ४६ ।।

---

## मूल प्रार्थना

सा मा सत्योक्तिः परि पातु विश्वतो द्यावा च यत्र ततनन्नहानि च ।
विश्वमन्यन्नि विशते यदेजति विश्वाहापो विश्वाहोदेति सूर्यः ।। ४७ ।।

ऋ० ७ । ८ । १२ । २ ।।

व्याख्यान—हे सर्वाभिरक्षकेश्वर ! "सा मा सत्योक्तिः" आपकी सत्य आज्ञा जिसका हमने अनुष्ठान किया, वह "विश्वतः, परि पातु, नः" हमको सब संसार से सर्वथा पालित और सब दुष्ट कामों से सदा पृथक् रक्खे कि कभी हमको अधर्म करने की इच्छा भी न हो "द्यावा, च" और दिव्य सुख से सदा युक्त करके यथावत् हमारी रक्षा करें । "यत्र" जिस दिव्य सृष्टि में "अहानि" सूर्यादिकों को दिवस आदि के निमित्त "ततनत्" आपने ही विस्तारे हैं, वहां भी हमारा सब उपद्रवों से रक्षण करो, "विश्वमन्य०" आप से अन्य (भिन्न) 'विश्व' अर्थात् सब जगत् जिस समय आपके

सामर्थ्य से (प्रलय में) "नि विशते" प्रवेश करता है (कार्य सब कारणात्मक होता है), उस समय में भी आप हमारी रक्षा करो। "यदेजति" जिस समय यह जगत् आप के सामर्थ्य से चलित हो के उत्पन्न होता है, उस समय भी सब पीड़ाओं से आप हमारी रक्षा करें। "विश्वाहापो, विश्वाहा" जो-जो विश्व का हन्ता (दुःख देने वाला) उसको आप नष्ट कर देओ, क्योंकि आपके सामर्थ्य से सब जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय होता है, आपके सामने कोई राक्षस (दुष्टजन) क्या कर सकता है? क्योंकि आप सब जगत् में उदित (प्रकाशमान) हो रहे हो, परन्तु सूर्य्यवत् हमारे हृदय में कृपा करके प्रकाशित होओ, जिससे हमारी अविद्यान्धकारता सब नष्ट हो ॥ ४७ ॥

---

## मूल स्तुति

देवो देवानामसि मित्रो अद्भुतो वसुर्वसूनामसि चारुरध्वरे।
शर्मन्त्स्याम तव सप्रथस्तमेऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ४८ ॥

ऋ० १। ६। ३२। १३॥

व्याख्यान—हे मनुष्यो! वह परमात्मा कैसा है? कि हम लोग उसकी स्तुति करें, हे अग्ने परमेश्वर! आप "देवो, देवानामसि" देवों (परमविद्वानों) के भी देव (परमविद्वान्) हो तथा उनको परमानन्द देने वाले हो तथा "अद्भुतः" अत्यन्त आश्चर्य्यरूप मित्र सर्वसुखकारक सबके सखा हो। "वसु०" पृथिव्यादि वसुओं के भी वास कराने वाले हो तथा "अध्वरे" ज्ञानादि यज्ञ में "चारुः" अत्यन्त शोभायमान और शोभा के देने वाले हो, हे परमात्मन्! "सप्रथस्तमे सख्ये, शर्मणि तव" आपके अतिविस्तीर्ण, आनन्दस्वरूप सखाओं के कर्म में हम लोग स्थिर हों, जिससे हमको कभी दुःख न प्राप्त हो और आपके अनुग्रह से हम लोग परस्पर अप्रीतियुक्त कभी न हों ॥ ४८ ॥

---

## मूल प्रार्थना

मा नो वधीरिन्द्र मा परा दा मा नः प्रिया भोजनानि प्र मोषीः।
आण्डा मा नो मघवञ्छक्र निर्भेन्मा नः पात्रा भेत्सहजानुषाणि ॥ ४९ ॥

ऋ० १। ७। १९। ८॥

व्याख्यान—हे इन्द्र परमैश्वर्य्ययुक्तेश्वर! "मा, नो, वधीः" हमारा वध मत कर अर्थात् अपने से अलग हमको मत गिरावै। "मा परा दाः" हमसे अलग आप कभी मत हो, "मा नः प्रिया०" हमारे प्रिय भोगों को मत चोर और मत चोरवावै, "आण्डा मा०" हमारे गर्भों का विदारण मत कर, हे "मघवन्" सर्वशक्तिमन् "शक्र" समर्थ हमारे पुत्रों का विदारण मत कर, "मा, नः, पात्रा" हमारे भोजनाद्यर्थ सुवर्णादि पात्रों को हमसे अलग मत कर, "सहजानुषाणि" जो-जो हमारे सहज अनुषक्त, स्वभाव से

अनुकूल मित्र हैं, उनको आप नष्ट मत करो अर्थात् कृपा करके पूर्वोक्त सब पदार्थों की यथावत् रक्षा करो ।। ४९ ।।

---

## मूल प्रार्थना

मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम् ।
मा नो वधीः पितरं मोत मातरं मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः ।। ५० ।।

ऋ० १ । ८ । ६ । ७ ।।

मा नस्तोके तनये मा न आयौ मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः ।
वीरान्मा नो रुद्र भामितो वधीर्हविष्मन्तः सदमित्त्वा हवामहे ।। ५१ ।।

ऋ० १ । ८ । ६ । ८ ।।

व्याख्यान—हे "रुद्र" दुष्टविनाशकेश्वर ! आप हम पर कृपा करो "मा, नो, व०" हमारे ज्ञानवृद्ध, वयोवृद्ध पिता इनको आप नष्ट मत करो तथा "मा नो अर्भकम्" छोटे बालक और "उक्षन्तम्" वीर्यसेचनसमर्थ जवान तथा जो गर्भ में वीर्य को सेचन किया है, उसको मत विनष्ट करो तथा हमारे पिता, माता और प्रिय तनुओं (शरीरों) का "मा, रीरिषः" हिंसन मत करो "मा, नस्तोके" कनिष्ठ, मध्यम और ज्येष्ठपुत्र, "आयौ" उमर "गोषु" गाय आदि पशु "अश्वेषु" घोड़ा आदि उत्तम यान हमारी सेना के शूरों में "हविष्मन्तः" यज्ञ के करनेवाले इन में, "भामितः" क्रोधित और "मा रीरिषः" रोषयुक्त होके कभी प्रवृत्त मत हो, हम लोग आपको "सदमित्त्वा, हवामहे" सर्वदैव आह्वान करते हैं, हे भगवन् रुद्र परमात्मन् ! आप से यही प्रार्थना है कि हमारी और हमारे पुत्र धनैश्वर्यादि की रक्षा करो ।। ५० ।। ५१ ।।

---

## मूल प्रार्थना

उद्गातेव शकुने साम गायसि ब्रह्मपुत्र इव सवनेषु शंससि ।
वृषेव वाजी शिशुमतीरपीत्या सर्वतो नः शकुने भद्रमा वद
विश्वतो नः शकुने पुण्यमा वद ।। ५२ ।। ऋ० २ । ८ । १२ । २ ।।

आवदँस्त्वं शकुने भद्रमा वद तूष्णीमासीनः सुमतिं चिकिद्धि नः ।
यदुत्पतन् वदसि कर्करिर्यथा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ।। ५३ ।।

ऋ० २ । ८ । १२ । ३ ।।

व्याख्यान—हे "शकुने" सर्वशक्तिमन्नीश्वर ! आप सामगान को गाते ही हो, वैसे ही हमारे हृदय में सब विद्या का प्रकाशित गान करो । जैसे यज्ञ में महापण्डित

सामगान करता है वैसे आप भी हम लोगों के बीच में सामादि विद्या का प्रकाश कीजिये "ब्रह्मपुत्र इव सवनेषु" आप कृपा से सवन (पदार्थविद्याओं) की "शंससि" प्रशंसा करते हो, वैसे हमको भी यथावत् प्रशंसित करो, जैसे "ब्रह्मपुत्र इव" वेदों का वेत्ता विज्ञान से सब पदार्थों की प्रशंसा करता है वैसे आप भी हम पर कृपा कीजिये, आप "वृषेवाजी" सर्वशक्ति का सेवन करने और अन्नादि पदार्थों के देनेवाले तथा महा बलवान् और वेगवान् होने से वाजी हो, जैसे कि वृषभ के समान आप उत्तम गुण और उत्तम पदार्थों की वृष्टि करनेवाले हो, वैसे हम पर उनकी वृष्टि करो "शिशुमतिः" हम लोग आप की कृपा से उत्तम शिशु (सन्तानादि) को "अपीत्य" प्राप्त होके आपको ही भजें "आसर्वतो नः शकुने" हे शकुने ! सर्वसामर्थ्यवान् ईश्वर ! सब ठिकानों से हमारे लिये "भद्रम्" कल्याण को "आ वद" अच्छे प्रकार कहो अर्थात् कल्याण की ही आज्ञा और कथन करो जिससे अकल्याण की बात भी कभी हम न सुनें। "विश्वतो, नः श०" हे सबको सुख देनेवाले ईश्वर ! सब जगत् के लिये "पुण्यम्" धर्मात्मा के कर्म करने को "आ वद" उपदेश कर, जिससे कोई मनुष्य अधर्म करने की इच्छा भी न करै और सब ठिकानों में सत्यधर्म की प्रवृत्ति हो। "आवदँस्त्वं शकुने" हे शकुने जगदीश्वर ! आप सब "भद्रम्" कल्याण का भी कल्याण अर्थात् व्यावहारिक सुख के भी ऊपर मोक्ष सुख का निरन्तर उपदेश कीजिये "तूष्णीमासीनः०" हे अन्तर्यामिन् ! हमारे हृदय में सदा स्थिर हो मौन से ही "सुमतिम्" सर्वोत्तम ज्ञान देओ, "चिकिद्धि नः" कृपा से हमको अपने रहने के लिये घर ही बनाओ और आपकी परमविद्या को हम प्राप्त हों "यदुत्पतन्वद०" उत्तम व्यवहार में पहुंचाते हुए आपका (यथा) जिस प्रकार से "कर्करिर्वदसि" कर्तव्य कर्म, धर्म को ही अत्यन्त पुरुषार्थ से करो, अकर्त्तव्य दुष्ट कर्म-मत करो ऐसा उपदेश है कि 'पुरुषार्थ' अर्थात् यथायोग्य उद्यम को कभी कोई मत छोड़ो, वैसे "बृहद्वदेम विदथे" विज्ञानादि यज्ञ वा धर्मयुक्त युद्धों में "सुवीरः" अत्यन्त शूरवीर होके बृहत् (सब से बड़े) आप जो परब्रह्म उन "वदेम" आपकी स्तुति, आपका उपदेश, आपकी प्रार्थना और उपासना तथा आपका यह बड़ा अखण्ड साम्राज्य और सब मनुष्यों का हित सर्वदा कहैं, सुनैं और आपके अनुग्रह से परमानन्द को भोगैं ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

ओ३म् महाराजाधिराजाय परमात्मने नमो नमः ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्याणां महाविदुषां श्रीयुतविरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण दयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचित आर्य्याभिविनये प्रथमः प्रकाशः पूर्त्तिमागमत् । समाप्तोऽयं प्रथमः प्रकाशः ॥

---